स्व. प्रभाष जोशी की कलम से विनोबाजी का एक अलग व्यक्तित्व प्रकट होता है

(आज विनोबा जी की 125वीं जयंती है)

अप्रैल, 1992 से प्रभाष जोशी ने अपना प्रसिद्ध स्तंभ 'कागद कारे' लिखना शुरू किया था. इस स्तंभ में कई बार उन्होंने अपने प्रिय व्यक्तित्वों के बारे में भी लिखा. बाद में इनमें से अलग-अलग तरह के आलेखों को छांटकर पांच पुस्तकें छपीं. इन्हीं में से एक पुस्तक है 'जीने के बहाने'. अलग-अलग तरह की शख्सियतों के बारे में लिखे गए इन लेखों में पहले तीन लेख महात्मा गांधी पर हैं. इसके बाद चार लेख विनोबा पर हैं और एक लेख जयप्रकाश नारायण पर. हों भी क्यों नहीं. प्रभाष जी स्वयं कहा करते थे कि 'मैं यदि कुछ हूं तो गांधीवादी.' जब वे एक साल के शिशु थे, तभी 1937 में महात्मा गांधी इंदौर आए थे और प्रभाष जी की माताराम उन्हें गांधीजी से आशीर्वाद दिलाने के लिए ले गई थीं.

विनोबा और जेपी के साथ तो उनके निजी तौर पर बड़े ही आत्मीय संबंध रहे. विनोबा के बारे में तो उन्होंने यह लिखा है कि 'विनोबा ने ही मुझे लिखने में डाला.'. एक स्थान पर प्रभाष जी ने यह भी लिखा है, '…जब विनोबा पहली बार नगर स्वराज का प्रयोग करने इंदौर आए तो नई दुनिया के लिए महीने भर उनको कवर किया. सुबह तीन बजे से शाम छह बजने तक विनोबा के साथ घूमता और फिर दफ्तर आकर टेबलॉइड साइज के पूरे दो पेज लिखता. कई बार हथेली पर भी नोट्स लेता क्योंकि विनोबा के साथ लगातार चलते रहना पड़ता था.'

साल 1995 विनोबा का जन्म-शताब्दी वर्ष था. इसे ठीक से न मनाए जाने को लेकर प्रभाष जी दु:खी थे. इस संदर्भ में उन्होंने 'कागद कारे' स्तंभ में ही एक के बाद एक चार लेख लिखे. इनका क्रमवार शीर्षक इस प्रकार था, 'जिस परमधाम में बाबा हैं', 'बाबा विनोबा के सौ साल होंगे', 'एक विचार के रस्म हो जाने का दुख' और 'हम उस बाबा को क्या भुलाएं'.

'हम उस बाबा को क्या भुलाएं' शीर्षक से एक लेख में वे लिखते हैं, 'गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी (यानी नेहरू) की शताब्दी तो सचमुच राजसी ढंग मनी, लेकिन उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा की जन्म-शताब्दी तो ऐसे मनी कि जैसे किसी को याद ही न हो कि विनोबा नाम के कोई महापुरुष इस देश में हुए हैं और अभी कोई पंद्रह साल पहले तक प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी उनसे आशीर्वाद लेने के लिए पवनार जाती थीं. सन् इक्कावन से सत्तर तक उनके भूदान ग्रामदान आंदोलन की

धूम मची रहती थी. हज़ारों कार्यकर्ता गांव-गांव अलख जगाते रहते थे और हर कांग्रेस सरकार से उसे समर्थन मिला. महात्मा गांधी ने जब सन् चालीस में व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया तो पहले सत्याग्रही न वे खुद बने, न नेहरू, पटेल, मौलाना या किसी और बड़े नेता को चुना. गांधी जी ने पहला सत्याग्रही चुना विनोबा को जो उनके आश्रम सेवाग्राम से कोई नौ किलोमीटर दूर अपने आश्रम परमधाम पवनार में रहते थे. विनोबा की सत्यनिष्ठा, नैतिक शक्ति और साधना में गांधीजी का ऐसा विश्वास था. तब आश्रम में रहनेवाले या गांधीजी के नजदीकी लोग तो विनोबा को जानते थे लेकिन देश नहीं जानता था. आखिर स्वयं गांधीजी ने 'हरिजन' में विनोबा का परिचय लिखा. गांधीजी ने दूसरा सत्याग्रही चुना था जवाहरलाल नेहरू को.'

'...विनोबा ने इस देश की कई परिक्रमाएं की थीं. कांडला से डिब्रूगढ़ और कश्मीर से कन्याकुमारी तक. अस्सी हजार किलोमीटर वे पैदल चले और मोटर, रेल आदि की यात्राएं जोड़ लें तो पृथ्वी का एक और चक्कर यानी आजादी के बाद सामाजिक-आर्थिक आजादी के लिए इस वामन अवतार ने पृथ्वी के तीन चक्कर लगाए. ऐसा कोई प्रांत नहीं है जिसमें विनोबा ने पदयात्रा न की हो. देश के भूपतियों ने कोई पांच लाख एकड़ जमीन उन्हें दान में दी और एक लाख गांवों के लोगों ने अपने गांव ग्रामदान में दिए. ऐसे नेता की कोई भी यादगार लोगों को नहीं होगी ? फिर ऐसा क्यों हुआ कि विनोबा जन्म शताब्दी मनती नहीं दिखी ? सरकारी स्तर पर नहीं तो लोग ही मनाते. या जो आयोजनों के जरिए मनती दिखती है वही हम देखते हैं बाकी हमें दिखाई नहीं देता ?'

प्रभाष जी ने विनोबा को भुलाए जाने को लेकर प्रेस और सामाजिक संगठनों पर भी बहुत ही मारक टिप्पणी की थी. उन्होंने लिखा- '...विनोबा इस देश की प्रेस के हीरो कभी नहीं रहे. सिर्फ इसलिए नहीं कि वे राजनीति में नहीं थे और राजनीति को वैसे प्रभावित भी नहीं करते थे जिस तरह से खबरें बनती हैं. बल्कि इसलिए भी कि उनके काम का ज्यादातर लेना-देना गांवों और भूमि से था और हमारी प्रेस नगर केंद्रित है. और आजकल तो उसका ऐसा खगोलीकरण हो रहा है कि वह पॉप गायक एलविस प्रेसली और बीटल जॉन लेनन को तो याद कर सकती है लेकिन विनोबा उसकी स्मृति में नहीं रह सकते. जिन लोगों को इस देश की ग्रामीण वास्तविकता से आंखें चार किए रहना पड़ता है और जो देश के भूमिहीन मजदूरों और उनकी भूमिहीनता और बेरोजगारी से चिंतित हैं कम से कम उन्हें तो विनोबा की जन्म शताब्दी पर उन्हें याद करना चाहिए था. देश में हज़ारों स्वैच्छिक संस्थाएं हैं और हजारों कार्यकर्ता किसी न किसी तरह की ग्राम सेवा या गांव से जुड़े लोगों के किसी काम में लगे हुए हैं. इनके लिए तो विनोबा न सिर्फ प्रासंगिक हैं बल्कि उनकी तपस्या और उनका काम प्रेरक होना चाहिए. ...प्रेस नगर और राजनीति केंद्रित है और रेडियो और टेलीविजन मनोरंजन के अलावा जो कुछ भी करना चाहते हैं सरकार के कहने पर करते हैं. चूंकि सरकार ने नहीं कहा इसलिए उनने भी विनोबा को उनकी जन्म शताब्दी पर याद नहीं किया.'

प्रभाष जी को आज के नेताओं में और यहां तक कि समाज में भी विनोबा के विचारों से जुड़ने और उसे समझने और अपनाने की काबिलियत पर ही संदेह होता है. अपने एक लेख में वे लिखते हैं, 'कहां विनोबा और कहां उनकी जन्म-शताब्दी मनानेवाले हम लोग. शायद महान व्यक्तियों का दुर्भाग्य है कि उनकी शताब्दियां मनाने के लिए ऐसे लोग रह जाते हैं जो उनके उत्तराधिकार के सर्वथा अयोग्य होते हैं.'

'बाबा विनोबा के सौ साल होंगे' शीर्षक वाले लेख में प्रभाष जी लिखते हैं, 'विनोबा का चलाया आंदोलन दरअसल आर्थिक और सामाजिक पुनर्रचना का अहिंसक प्रयोग था. ...सर्वोदय आंदोलन उन्होंने 'सर्वेषां अविरोधेन' ढंग से चलाया यानी किसी के भी विरोध में कोई काम नहीं किया. वे अहिंसा और करुणा से समाज और व्यक्ति में मूल परिवर्तन करके साम्ययोगी समाज बनाना चाहते थे. लेकिन गांधी के ऋण से मुक्त होने का विनोबा का प्रयोग अनिवार्यतः विनोबा का ही था. ...अगर विनोबा और जवाहरलाल नेहरू मिलकर राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आजादी के लिए गांधी के क्रांतिकारी अहिंसक ढंग से काम करते तो क्या देश की वही हालत रहती जो हम देख रहे हैं. ...जवाहरलाल नेहरू ने वही लोकतंत्र अपनाया जिसे गांधी हिंद स्वराज्य में ही रद्द कर चुके थे. वे वेस्टमिंस्टर मॉडल के लोकतंत्र में रूसी मॉडल की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था चाहते थे. रूस की तर्ज पर जब जवाहरलाल पंचवर्षीय योजना बनवा रहे थे तब उनके बुलावे पर विनोबा ने योजना आयोग को कहा था कि आज जो नियोजन कर रहे हो वह निरसन के सिद्धांत पर है. जो कुछ थोड़ा बहुत पानी नीचे के गरीबों के पास ऊपर के अमीरों के तालाब से रिसकर आएगा वह गरीबी नहीं मिटा सकेगा. अमीर और अमीर होंगे और गरीब और गरीब. ऐसा कहकर विनोबा दिल्ली से चले गए और सर्वोदय आंदोलन में लग गए. वे जानते थे कि नेहरू की कोशिशों का क्या नतीजा होगा लेकिन उनने कभी नेहरू की आलोचना तक नहीं की.'

जिस 'अनुशासन-पर्व' वाले वक्तव्य को लेकर विनोबा के बारे में भ्रम फैलाया गया और उसकी मूढ़तापूर्ण व्याख्या-दुर्व्याख्या की गई, यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि प्रभाष जोशी उस दौर में भी उन अल्पसंख्यक बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व करते नज़र आते हैं जिन्हें महाभारत के इस शब्द का विनोबा द्वारा किए गए प्रयोग का वास्तविक अर्थ और मर्म मालूम था और इसपर पूरे दम से सार्वजनिक तौर पर लिखने में उन्होंने गुरेज नहीं किया. विनोबा के अविरोध की साधना को प्रभाष जोशी गहनतम स्तर पर महसूस करते हुए लिखते हैं, 'दिल्ली से जो राजनीति चल रही थी उसके खिलाफ अहिंसक संघर्ष की तो विनोबा से कोई आशा ही नहीं करता था. विनोबा ने इमरजंसी तक में इंदिरा गांधी का विरोध और जेपी आंदोलन का समर्थन नहीं किया. इमरजंसी को उन्होंने महाभारतीय अर्थ में 'अनुशासन पर्व' कहा जिसका मतलब राज्य नियंत्रित प्रचार तंत्र ने यह निकाला कि देश को अनुशासन में रहने की जरूरत है. लेकिन राज्य का शासन और आचार्यों-ऋषियों का अनुशासन बतानेवाले विनोबा के खड़ा किए आचार्य कुल ने जब प्रस्ताव पास कर के इमरजंसी उठाने की मांग की तो न सिर्फ इंदिरा गांधी की सरकार ने उसे छपने नहीं दिया बल्कि पवनार आश्रम की जिस मासिक पत्रिका— 'मैत्री' में आचार्य कुल सम्मेलन रपट छपी थी उसकी प्रतियां भी जब्त करवा लीं. फिर भी विनोबा ने कभी इंदिरा गांधी का विरोध नहीं किया. वे जेपी आंदोलन से भी सहमत नहीं थे लेकिन उनने जेपी का विरोध तो दूर आलोचना तक नहीं की. 'सर्वेषां अविरोधेन' को विनोबा ने इतना साध लिया था.'

लेकिन विनोबा की सबसे बड़ी साधना थी निष्काम कर्म को साधने की. प्रभाष जोशी लिखते हैं, 'जब गांधी जैसे कर्मयोगी और कीर्तिवान गुरु ने विनोबा से कहा कि हमारे सभी कामों का परिणाम शून्य है, तो यह कैसे हो सकता था कि विनोबा अपने काम का परिणाम बहुत बड़ा मानते. गांधी जब सेवा करके छूट जाना चाहते थे तो विनोबा तो और भी निष्काम सेवक थे. विनोबा ने कहा कि इन दो वाक्यों में बापू का सारा तत्वज्ञान आ जाता है. विनोबा ने इसमें से वही लिया जो वे लेना चाहते थे. यानी निष्काम कर्म करो और उसके परिणाम की कोई चिंता न करो. वह तो वैसे भी शून्य है. इसलिए विनोबा अगर अपनी

जन्म शताब्दी के दिन पैदल यात्रा करने निकलते तो अपने भुला दिए जाने का उन्हें कहीं कोई दुख नहीं होता. बल्कि वे मानते कि सब कुछ वैसा ही हो रहा है जैसी कि उन्हें अपेक्षा थी. विनोबा तो सन् बयासी में इच्छा मृत्यु का वरण करने के बारह साल पहले ही क्षेत्र सन्यास ले चुके थे.'

गांधीजी ने हिंद स्वराज में आखिरी अध्याय का शीर्षक दिया था, 'छुटकारा'. यह एक अध्याय पिछले सारे अध्याय को अध्यात्मिकता के रस में विलीन कर देनेवाला है. और विनोबा तो मूलतः अध्यात्म के जीव थे. प्रभाष जोशी विनोबा के उस छुटकाराभाव को बहुत निकट से महसूस करते हुए कहते हैं, 'देश सेवा और ब्रह्म साधना का योग गांधीजी ने विनोबा को दिया. कोई बत्तीस साल विनोबा चुपचाप रचनात्मक कार्यों में लगे रहे. गांधी की हत्या नहीं होती तो वे नहीं निकलते. गांधी का ऋण चुकाने के लिए ही वे भूदान-ग्रामदान यात्रा पर निकले और पृथ्वी की तीन परिक्रमाएं कर डालीं. जो उन्होंने किया वह उनका मूल पिंड नहीं था. गांधी ऋण चुकाने का प्रयास था. इसलिए वे भूदान-ग्रामदान को अपना पराक्रम, अपनी उपलब्धि मान ही नहीं सकते थे. गांधी से अपनी पहली भेंट के पचास साल बाद उन्होंने कर्ममुक्ति की, फिर ग्रंथमुक्ति, अध्यापन मुक्ति और स्मृति मुक्ति और फिर क्षेत्र संन्यास लेकर उसी परमधाम पवनार में पहुंच गए. सिर्फ दो बार अपने आश्रम से बाहर आए.'

'...तब विनोबा ने कहा, 'मैं अपने मन में मान कर चल रहा हूं कि अपनी मृत्यु के पूर्व मुझे मरना है. मनुष्य को मृत्यु के पूर्व मरना चाहिए. अपनी वफात अपनी आंखों से देखना चाहिए. यही मेरी आकांक्षा है. इसलिए मैंने सोचा कि मैं मरने के पहले मर जाऊं और देखूं कि भूदान का क्या होता है.' तो विनोबा जीते जी देख चुके थे कि. उन्होंने जीते जी अपनी मृत्यु देख ली थी बल्कि बारह साल तक देखते रहे. उन्होंने कहा भी कि 'मैंने अपनी मृत्यु अपनी आंखों से देखी वह अनुपम्य अवसर था'. पंद्रह नवंबर बयासी को दिवाली के दिन वे भीष्म पितामह की तरह इच्छामृत्यु से मरे. उन्होंने अपनी मृत्यु को सचमुच उत्सव बना दिया.

मुक्ति और छुटकारे का यही मंत्र विनोबा ने प्रभाष जोशी को भी दिया था. इसे याद करते हुए एक अन्य लेख में प्रभाष जोशी लिखते हैं, '(विनोबा की समाधि वाली) संगमरमर की शिला पर अपने दोनों हाथ रखकर और उनपर पूरा वजन देकर सिर नीचा किए ध्यान में एकचित्त हो गया. उस स्पर्श को पाने के लिए जो कोई बत्तीस साल पहले विनोबा की कोमल हथेली से मिला था और जिससे मैंने अपने आप को शुद्ध होते महसूस किया था. उतरती शाम की उस सघन शांति में बाबा ने मुझे कहा, कर्म का मोह और अहंकार तुझे नष्ट कर देगा. इसे छोड़.'

इसी लेख में प्रभाष जोशी स्वयं विनोबा का वह प्रसंग भी सुनाते हैं जब विनोबा सेवाग्राम आश्रम छोड़कर पवनार में आश्रम बसाने जा रहे थे. उनका स्वास्थ्य बहुत कमजोर था और वे पैदल चल नहीं सकते थे. इसलिए जब वे मोटर से पवनार पहुंचने के दौरान धाम नदी का पुल पार कर रहे थे, तब उन्होंने तीन बार कहा, 'संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया (मैंने छोड़ा, मैंने छोड़ा, मैंने छोड़ा.)' इसपर प्रभाष जोशी आगे कहीं लिखते हैं, 'विनोबा ने बहुत साधन और तपस्या से स्मृति से मुक्ति पाई थी. देश को उन्हें भुलाने में कोई खास कोशिश नहीं करनी पड़ी.'

विनोबा तो मुक्त हुए. जयंतियों और पुण्यतिथियों से उनका क्या वास्ता? स्वयं प्रभाष जोशी ने भी

विनोबा की इच्छा मृत्यु के दिन कुछ भी नहीं लिखा था जबकि वे उस समय इंडियन एक्सप्रेस दिल्ली के स्थानीय संपादक थे. प्रभाष जोशी के शब्दों में, 'ऐसे बाबा से अपने संबंध का तकाजा कभी नहीं रहा कि उनके अग्नि संस्कार में शामिल होते या उनके जन्म दिवस या पुण्यतिथि पर परमधाम पवनार जाते.'

और राजनीतिक दलों और सरकारों से इसकी क्या अपेक्षा करना. विनोबा स्वयं कह गए थे 'अ-सरकारी असरकारी' और प्रभाष जोशी ने किसी अन्य संदर्भ में लिखा था- 'एक पार्टी नागनाथ, दूसरी पार्टी सांपनाथ और अपना हाथ जगन्नाथ'.

साभार- https://satyagrah.scroll.in/ से